अर्थात् काव्य वह शब्दार्थमयी रचना है, जो रसात्मक, मंगलकारिणी एवं छंदोबद्ध हो। इस प्रकार तुलसी की दृष्टि में काव्य के लिए चार तत्त्व आवश्यक हैं -

1. शब्दार्थमयता
2. रसात्मकता
3. छन्दोबद्धता
4. मंगलकारिणी या लोकमंगल

जहाँ तक **शब्दार्थमयता** का प्रश्न है संस्कृत के आचार्यों ने 'शब्दार्थौः सहितौ काव्यम्', 'ननु शब्दार्थौ काव्यम्', 'विशिष्ट पदरचना रीतिः', 'वाक्यं रसात्मकं काव्यम्' आदि के माध्यम से शब्दार्थ रचना एवं शब्द-अर्थ के सौहित्य को काव्य रचना का प्राथमिक पक्ष माना है। गोस्वामी जी ने तो 'आखर अरथ अलंकृति नाना', 'गिरा अरथ जल बीचि सम कहिअत भिन्न न भिन्न' कहकर दोनों को अभिन्न माना। पतंजलि ने भी शब्द और अर्थ में नित्य संबंध माना है (सिद्धे शब्दार्थ संबंधे नित्य पर्यायवाची सिद्ध शब्दः) कालिदास ने वाणी और अर्थ में संपृक्तता स्वीकार की है 'वागर्थाविव संपृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये'। तुलसी की दृष्टि में जिस प्रकार 'रवि आतप भिन्न न भिन्न' है, जिस प्रकार 'जल-वीचि भिन्न न भिन्न' है, उसी प्रकार शब्द और अर्थ भी राम सीता की तरह ही पारमार्थिक दृष्टि से एक हैं, केवल व्यावहारिक दृष्टि से भिन्न प्रतीत होते हैं -

गिरा अरथ जल बीचि सम कहियत भिन्न न भिन्न।
बंदौ सीता राम पद जिन्हहिं परम प्रिय खिन्न।।[18]

संस्कृत ही नहीं अनेक रीतिवादी आचार्यों ने शृंगार को रसराज माना है। तुलसी के समय में ही केशवदास ने शृंगार रस को नायकत्व दिया -

नवहू रस के भाव बहु तिनके भिन्न विचार।
सबको केसवदास हरि नायक हैं शृंगार।।

किन्तु तुलसी शृंगार को हेय मानते हैं। तुलसी की दृष्टि में भक्ति रस ही महत्त्वपूर्ण है - "जो मोहि राम लागते मीठे। तौ नवरस षटरस रस अनरस ह्वै जाते सब सीठे'। मधुसूदन सरस्वती, रूप गोस्वामी, जीव गोस्वामी ने भी भक्ति रस को परम रस के रूप में मान्यता दी है। गोस्वामी जी का काव्य एवं उनकी सम्पूर्ण साधना

में 'भक्ति रस' न केवल काव्य का एक अंग है, बल्कि यही उनके सम्पूर्ण चिन्तन की मूल्यवत्ता है, सार्थकता है। यही रसात्मकता तुलसी को लोकमंगल, सर्वजन हित के पक्ष में खड़ा करती है। रामचरितमानस में उन्होंने अलंकार, अर्थवैचित्य, ध्वनि, वक्रोक्ति, भाव, छन्द और रस आदि का उल्लेख तो किया ही है, साथ में प्रतिपाद्य विषय एवं प्रतिपादन शैली का भी बड़ा सार्थक संकेत किया है --

सप्त प्रबन्ध सुभग सोपाना। ज्ञान नयन निरषत मन माना।।
रघुपति महिमा अगुन अबाधा। बरनब सोइ बर बारि अगाधा।।
रामसीय जस सलिल सुधा सम। उपमा बीचि बिलास मनोरम।।
पुरइनि सघन चारू चौपाई। जुगुति मंजु मनि सीप सुहाई।।
छंद सोरठा सुंदर दोहा। सोइ बहु रंग कमल कुल सोहा।।
अरथ अनूप सुभाव सुभाषा। सोइ पराग मकरंद सुबासा।।
सुकृत पुंज मंजुल अलि माला। ज्ञान बिराग बिचार मराला।।
धुनि अवरेब कबित गुन जाती। मीन मनोहर ते बहु भाँति।।
अरथ धरम कामादिक चारी। कहब ज्ञान विज्ञान विचारी।।
नवरस जय जपजोग बिरागा। ते सब जनचर चारू तड़ागा।।[19]

तुलसी समन्वयवादी हैं, किन्तु काव्यात्मा के प्रश्न पर तुलसी की दृष्टि रसवादी है। समस्त काव्यांगों में रस ही महत्त्वपूर्ण है और यही काव्यत्व एवं कवित्व दोनों की कसौटी है --

.. 'सम जम नियम फूल फल नाना। हरिपदरति रस वेद बखाना।।'[20]
.. 'निज कबित्त केहि लाग न नीका। सरस होउ अथवा अति फीका।'[21]
.. 'जदपि कबित रस एकौ नाहीं। राम प्रताप प्रगट एहि माहीं।।'[22]

तुलसी रस को काव्य की आत्मा मानते हैं, नव रसों को रेखांकित भी करते हैं, किन्तु उन्होंने भक्तिरस को मान्यता दी है अन्य रसों को नहीं। वे अपनी रसात्मक चेतना को सत्य से जोड़ते हैं और यह सत्य ही तुलसी की साधना भूमि, काव्य भूमि है, मूल्य दृष्टि भी है -

'कबित विवेक एक नहिं मोरे। सत्य कहौं लिखि कागद कोरे।।'[23]

यही वह तत्त्व है, जिसके कारण कुकवि का गुणहीनकाव्य भी सुधीजनों में समादृत होता है -

सबगुन रहित कुकवि कृत बानी। राम नाम जस अंकित जानी।।
सादर कहहिं सुनहिं बुध ताही। मधुकर सरिस संत गुनग्राही।।[24]

तुलसी श्रृंगार जैसे रसों को हेय समझते हैं --

संबुक भेक सेवार समाना। इहां न विषय कथा रस नाना।।
तेहि कारन आवत हिअँ हारे। कामी काक बलाक बिचारे।। [25]

जहाँ तक काव्य प्रयोजन का प्रश्न है, तुलसी 'स्वान्तः सुखाय तुलसी रघुनाथ गाथा भाषानिबन्धमतिमंजुलमातनोति' कहकर स्वान्तः सुख को ही काव्य का मूल प्रयोजन मानते हैं। अर्थ, काम, यश जैसे प्रयोजन उनकी दृष्टि में निरर्थक हैं, क्योंकि उनकी स्पष्ट मान्यता है कि 'सुत बित लोक ईषना तीनी। केहि कै मति इन्ह कृत न मलीनी'। यश एवं अर्थ कामना चित्त को मलिन करने वाले हैं। कालिदास ने भी यश कामना को कविता के औदात्य के लिए बाधक माना है - 'मन्दः कवियशः प्रार्थी गमिष्यान्युप हास्यताम्' (रघुवंश, 1/3)। तुलसी की दृष्टि में काव्य के दो प्रयोजन है -- मंगल विधान या लोककल्याण और आनन्दानुभूति, जिसका उल्लेख अनेक स्थलों पर मिलता है -

.. ऋद्धि सिद्धि कल्यान सकल नर पावइँ हो। (रामलला नहछू)[26]
.. कीरति भनिति भूति भलि सोई। सुरसरि सम सब कहँ हित होई।।[27]
.. मंगल करनि कलिमल हरनि तुलसी कथा रघुनाथ की।[28]
.. तुलसी सकल कल्यान ते नर नारि अनुदितन पावहीं।[29]

कहना न होगा कि तुलसी का स्वान्तः सुखाय एकांगी एवं व्यक्तिनिष्ठ नहीं है, वह सार्वभौमिक, सार्वदेशिक, सर्वकालिक है। उनकी स्वान्तः चेतना लोक मंगल की चेतना ही है। इसीलिए रसानुभूति की व्यंजना के लिए उनका कथन है --

सम जम नियम फूल फल ज्ञाना।
हरि पद रति रस वेद बखाना।।[30]

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का कथन है, "गोस्वामी जी ने यद्यपि अपनी रचना 'स्वान्तः सुखाय' बताई है, पर वे कला की कृति के अर्थ और प्रभाव की प्रेषणीयता

(कम्युनिकेबिलिटी) को बहुत ही आवश्यक मानते थे। किसी रचना का वही भाव जो कवि के हृदय में था यदि पाठक या श्रोता के हृदय तक न पहुँच सका तो ऐसी रचना कोई शोभा नहीं प्राप्त कर सकता, उसे एक प्रकार से व्यर्थ समझना चाहिए।"[31] गोस्वामी जी ने भी इस भाव को अपने मानस में प्रकट किया है –

मनिमानिक मुकता छवि जैसी। अहिर गिरि, गज सिर सोह न तैसी।।
नृप किरीट तरूनी तन पायी। लहहिं सकल सोभा अधिकाई ।।
तैसई सुकवि कवित बुध कहहीं। उपजहिं अनत, अनत छबि लहही।।[32]

जहाँ तक काव्य हेतु का प्रश्न है, संस्कृत आचार्यों ने प्रतिभा, व्युत्पत्ति, अभ्यास के रूप में तीन हेतुओं को मान्यता दी है, किन्तु अधिकांश आचार्यों ने इनमें से किसी एक को ही प्रधान हेतु के रूप में स्वीकृति दी। मम्मट न शक्ति (अभ्यास) को विशेष हेतु माना है - 'शक्तिर्निपुणता लोककाव्य शास्त्रवेक्षणात'। राजशेखर ने 'काव्यं तु जायते जातु कस्यचित् प्रतिभावतः' कहकर प्रतिभा को मान्यता दी, आनन्दवर्द्धन ने भी 'प्रतिभा व्युत्पत्योंः प्रतिभा श्रेयसी, इति आनन्द' कहकर प्रतिभा को प्रधान हेतु स्वीकार किया, किन्तु गोस्वामी जी ने शक्ति, जो ईश्वर प्रदत्त है, को काव्य का हेतु स्वीकार किया -

सारद दारूनारि सम स्वामी। राम सत्रधर अंतरजामी।।
जेहि पर कृपा करहिं जनु जानी। कवि उर अजिर न चाहिं बानी।।[33]

जहाँ तक व्युत्पत्ति का प्रश्न है भामह ने बहुज्ञता, विविध कलाओं, विधाओं, लोक जीवन आदि के ज्ञान' को व्युत्पत्ति माना है, तो राजशेखर ने उचित-अनुचित विवेक को। गोस्वामी जी ने दोनों ही मतों को स्वीकार करते हुए व्युत्पत्ति को भी काव्य के हेतु के रूप में स्वीकार किया है –

कवि न होउँ नहिं वचन प्रवीनू। सकल कला सब विद्या हीनू।
कवित विवेक एक नहिं मोरे। सत्य कहहूँ लिखि कागद कोरे।।[34]

गोस्वामी जी ने अभ्यास की चर्चा स्पष्ट रूप से कहीं नहीं की है, किन्तु श्रम शब्द का उल्लेख अनेक स्थलों पर मिलता है, जिनसे अभ्यास काव्य हेतु की व्यंजना की जा सकती है।

काव्यादर्श के प्रश्न पर तुलसी की चेतना प्रगतिशील है। उन्होंने ऐसे राम को काव्य का नायक बनाया, जो मूल्य चेतना के स्तर पर सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक, धार्मिक, दार्शनिक सभी मूल्यों के आदर्श तो हैं ही शोक संतप्त, दुःखी, श्रमित जनमानस के प्रति पक्षधर भी हैं, लोकादर्श, लोक मूल्यों के आधार है, मनुष्य की मनुष्यता, शील, विनम्रता के प्रसारक हैं। मनुष्यता की रक्षा के लिए, धर्म के कल्याण के लिए, मनुष्य विरोधी शक्तियों के संचार के लिए सदैव प्रस्तुत होने वाले हैं --

जब जब होइ धरम की हानी। बाढ़हि असुर अधम अभिमानी।।
तब तब प्रभु धरि बिबिध सरीरा। हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा।।[35]

और इस काव्य नायक के राज्य में किसी को भी किसी भी प्रकार का कोई कष्ट नहीं है --

दैहिक दैविक भौतिक तापा।
राम राज्य काहुहिं नहिं व्यापा। [36]

इसीलिए उस सामंतवादी, जातिवादी, संकीर्णतावादी व समाज के लिए तुलसी का काव्य नायक ही आदर्श हो सकता था, कोई आदिकालीन सामंत नहीं, जिसकी चेतना एवं चिन्तन दोनों ही सीमित है। तुलसी का नायक अपने समाज की कुरीतियों के समक्ष एक चुनौती है, इसीलिए तुलसी कहते हैं कि प्राकृजनों का गुणगान सरस्वती का अपमान है -

कीन्हें प्राकृत जन गुन गाना। सिर धुनि गिरा लगति पछिताना।[37]

राम का चरित्र समाज के लिए अनुकरणीय है, इसीलिए तुलसी का स्पष्ट मत है-

सब गुन रहित कुकवि कृत बानी। राम नाम जस अंकित जानी।।
सादर कहहिं सुनहिं बुध ताही। मधुकर सरिस संत गुनग्राही।।[38]

इसी भाव दशा में मैथिलीशरण गुप्त ने भी कहा -

रामः तुम्हारा वृत्त स्वयं ही काव्य है,
कोई कवि बन जाय, सहज संभाव्य है।

और ऐसे चरित्र से सम्पन्न काव्य साधारणीकरण की दृष्टि से भी रेखांकित करने योग्य है। ऐसी रचना द्वारा ब्रह्मानन्द एवं ब्रह्मानन्द सहोदर रसों की अनुभूति तो हो

ही सकती है, साथ में लोक मंगल की संवेदना का प्रसार करने में भी ऐसी रचना सक्षम है। यही तुलसी का काव्यादर्श भी है और जीवनादर्श भी –

रामचरितमानस एहि नामा। सुनत स्रवन पाइअ विश्रामा।।
मन करि विषय अनल बन जरई। होइ सुखी जौ येहि सर परई।।[20]

सन्दर्भ

1. सूरसागर, प्रथम खण्ड 678
2. सूरसागर, दूसरा खण्ड 1192
3. सूरसागर, दूसरा खण्ड 1679
4. सन्दर्भ, भक्तिलीन कवियों का काव्य सिद्धान्त - डॉ0 सुरेश चन्द्र गुप्त
5. नन्द दास-ग्रन्थावली, रूप मंजरी, पृष्ठ 125
6. वही
7. वही, गोवरधन लीला, पृष्ठ 167
8. वही, रासपंचाध्यायी, पृष्ठ 20
9. नन्ददास ग्रन्थावली, रूक्मिणी मंगल, पृष्ठ 185
10. नन्ददास ग्रन्थावली, रसमंजरी, पृष्ठ 104
11. रसमंजरि अनुसार कै, 'नंद' सुमति अनुसार ।
    बरनत बनिता भेद जहँ, प्रेम सार, विस्तार ।।
    – नन्द दास ग्रन्थावली, रस मंजरी, पृष्ठ 127
12. भक्तिकालीन कवियों के काव्य सिद्धान्त – डॉ0 सुरेश चन्द्र गुप्त, पृष्ठ 188
13. नन्ददास ग्रंथावली, रसमंजरी, पृष्ठ 131
14. कवि प्रिया, 2/17
15. रामचरित मानस
16. रामचरितमानस
17. रघुवंश, 1/1
18. रामचरितमानस, 1/18
19. वही, 1/9/4-5
20. वही, 1/37/7

21. वही, 1/8/6
22. वही, 1/10/4
23. वही, 1/9/6
24. वही, 1/10/3
25. वही, 1/38/2-3
26. रामलला नहछू
27. रामचरितमानस, 1/14/5
28. वही, 1/10
29. वही
30. वही, 1/37/14
31. गोस्वामी तुलसीदास-आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ 60
32. रामचरित मानस, 1/10/1'3
33. रामचरित मानस, 1/105/3
34. वही, 1/9/8, 11
35. वही, 1/120/6, 8
36. वही, 7/20
37. वही, 1/11/4
38. वही, 1/10/3
39. वही, 1/35/4